IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 3 July-September, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
https://doi.org/10.5281/zenodo.23193755

ISSN : 3048-6971

माता जानकी की लोक-चेतना और सीतामढ़ी की सांस्कृतिक विरासत : एक अध्ययन

मृणाल कुमार
(शोधार्थी) हिंदी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

1. सार

भारतीय लोक-जीवन में कुछ व्यक्तित्व ऐसे होते हैं जो शास्त्र की सीमाओं को लाँघकर जन-जन के हृदय में बस जाते हैं। माता जानकी — जिन्हें मिथिलांचल की धरती पर प्रेम से "जानकी माई" और "जनकदुलारी" कहा जाता है — ऐसी ही एक अलौकिक उपस्थिति हैं। वे रामायण की नायिका होने से पहले मिथिला की बेटी हैं, और इसीलिए उनसे जुड़ी लोक-चेतना किसी पोथी में नहीं, बल्कि इस क्षेत्र की महिलाओं के गीतों में, उनके आँगन की दीवारों पर बनी मधुबनी चित्रकला में और उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही कहानियों में जीवित है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी लोक-चेतना को समझने और सीतामढ़ी की सांस्कृतिक विरासत को उसके समग्र रूप में प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास है। सीतामढ़ी — जो वर्तमान बिहार के उत्तरी छोर पर नेपाल की सीमा से सटा एक जनपद है — पुरातात्त्विक, धार्मिक और लोक-परम्परागत दृष्टि से माता सीता की जन्मभूमि के रूप में सुप्रसिद्ध है। किन्तु यह शोध केवल धार्मिक तथ्यों की पुष्टि तक सीमित नहीं है। इसका मूल उद्देश्य यह जानना है कि माता जानकी की छवि किस प्रकार मिथिला की स्त्री-अस्मिता, उसके सुख-दुःख, उसके संघर्ष और उसकी सामाजिक चेतना से एकाकार हो गई है।

इस शोध में वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस, विद्यापति के पद, मैथिली लोक-गीत, समदाउन, सोहर, मधुबनी चित्रकला, पुरातात्त्विक साक्ष्य तथा क्षेत्रीय मौखिक परम्पराओं को आधार बनाया गया है। शोध यह स्थापित करता है कि माता जानकी की लोक-चेतना एक जीवन्त, गतिशील और समकालीन सांस्कृतिक शक्ति है — जो सदियों से मिथिलांचल को उसकी विशिष्ट पहचान देती आई है और आज भी उतनी ही प्रासंगिक बनी हुई है।

मुख्य शब्द : माता जानकी, लोक-चेतना, सीतामढ़ी, मिथिला संस्कृति, सांस्कृतिक विरासत, मधुबनी, मैथिली लोक-साहित्य, स्त्री-अस्मिता

2. प्रस्तावना

मिथिला की धरती पर एक कहावत बहुत पुरानी है — *"जतय जनक, ततय जानकी"* — अर्थात् जहाँ जनक की स्मृति है, वहाँ जानकी की उपस्थिति है। यह केवल एक भौगोलिक तथ्य नहीं है, यह एक सांस्कृतिक सत्य है जो इस पूरे अंचल के जनमानस में गहरी जड़ें जमाये बैठा है। आज भी जब सीतामढ़ी की किसी गली में विवाह होता है, तो माँ की आँखों से जो आँसू बहते हैं वे केवल बेटी की विदाई के नहीं होते — वे जानकी माई की विदाई की उस पुरानी स्मृति के भी होते हैं जो पीढ़ियों से गीतों में जीवित है। भारत में लोक और शास्त्र का सम्बन्ध सदा से एक जटिल किन्तु रचनात्मक द्वन्द्व रहा है। शास्त्र जहाँ किसी देवी या महापुरुष को एक विशेष दार्शनिक और धार्मिक संरचना में स्थापित करता है, वहीं लोक उन्हें अपनी भाषा में, अपनी जरूरत के अनुसार, अपने जीवन के करीब ले आता है। माता सीता के साथ यही हुआ है — और शायद इसी कारण वे आज भी उतनी जीवित हैं जितनी कभी थीं। वाल्मीकि ने उन्हें महाकाव्य में अमर किया, तुलसीदास ने उन्हें आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित किया, किन्तु मिथिला की उन अनपढ़ महिलाओं ने — जो न वाल्मीकि को जानती थीं, न संस्कृत को — उन्हें अपने सोहर और समदाउन में उतारकर अपना बना लिया। यही लोक की सबसे बड़ी ताकत है।

सीतामढ़ी का नाम सुनते ही मन में एक विशेष भाव जागता है। यह कोई साधारण जनपद नहीं — यह वह भूमि है जहाँ पौराणिक आख्यान के अनुसार राजा जनक के हल की नोक ने धरती को चीरा और उसमें से एक कन्या प्रकट हुई। उस कन्या का नाम "सीता" पड़ा — क्योंकि "सीता" का अर्थ ही हल की रेखा है। यह नाम मात्र एक पहचान नहीं है, यह एक सम्पूर्ण दर्शन है। इस नाम में स्त्री और धरती का, जीवन और कृषि का, सहनशीलता और उर्वरता का वह अद्‌भुत सम्बन्ध छिपा है जो मिथिलांचल की संस्कृति की आत्मा है। इस शोध-पत्र में हम माता जानकी से जुड़ी लोक-चेतना के विभिन्न स्वरों को सुनने और सीतामढ़ी की सांस्कृतिक विरासत को उसकी सम्पूर्णता में देखने का प्रयास करेंगे — लोक-गीतों में, कला में, उत्सवों में, पुरातात्त्विक अवशेषों में और सबसे बढ़कर उन सामान्य लोगों की स्मृति में जो इस विरासत को अपने भीतर जीवित रखे हुए हैं।

2. ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक परिप्रेक्ष्य

2.1 सीतामढ़ी की भौगोलिक पहचान

किसी भी संस्कृति को समझना हो तो पहले उस भूमि को समझना पड़ता है जिसने उसे जन्म दिया। सीतामढ़ी केवल एक प्रशासनिक जनपद का नाम नहीं है — यह उस भूगोल का नाम है जिसने सदियों से अपनी मिट्टी में एक असाधारण स्त्री की स्मृति को सँजो कर रखा है। वर्तमान बिहार राज्य के उत्तरी भाग में स्थित सीतामढ़ी जनपद 26°34' उत्तरी अक्षांश और 85°29' पूर्वी देशान्तर के मध्य फैला हुआ है। उत्तर में यह जनपद नेपाल की अन्तरराष्ट्रीय सीमा को स्पर्श करता है, पूर्व में दरभंगा और मधुबनी, दक्षिण में मुजफ्फरपुर और पश्चिम में शिवहर जिले से घिरा हुआ है। इसकी भौगोलिक स्थिति ही इसे विशेष बनाती है — यह वह क्षेत्र है जो प्राचीन मिथिला राज्य के हृदय में था। बागमती, लखनदेई, लाल बकेया और अधवारा समूह की नदियाँ इस भूखण्ड को सींचती हैं। इन नदियों की बाढ़ और इनके द्वारा बिछाई गई उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी ने यहाँ के जनजीवन को एक कृषि-प्रधान चरित्र दिया। और यही कृषि-संस्कृति माता सीता की जन्म-कथा से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी है — वह स्वयं हल की रेखा से उत्पन्न हुई थीं, धरती की पुत्री थीं। इस क्षेत्र में आज भी किसान जब अपने खेत जोतता है तो उसके मन में यह भाव अनायास आता है कि इसी धरती से जानकी माई प्रकट हुई थीं।

प्राचीन काल में यह सम्पूर्ण क्षेत्र "मिथिला" या "विदेह राज्य" के नाम से जाना जाता था। जनक वंश के राजाओं का शासन यहाँ था जो न केवल कुशल प्रशासक थे बल्कि दार्शनिक और विद्वान भी थे। राजा जनक का दरबार उस युग का एक बौद्धिक केन्द्र था जहाँ याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि शास्त्रार्थ करते थे और जहाँ स्वयंवर में धनुष तोड़ने की शर्त केवल पराक्रम की नहीं, उस युग की सांस्कृतिक परिष्कृति की भी परीक्षा थी। आज का सीतामढ़ी नगर उसी प्राचीन गौरव की विरासत को अपने कन्धों पर लिये खड़ा है। भले ही वह वैभव अब भौतिक रूप में दिखाई न दे, किन्तु यहाँ की मिट्टी की सुगन्ध में, यहाँ के बुजुर्गों की बातों में और यहाँ के मन्दिरों की घंटियों की आवाज में वह इतिहास आज भी जीवित है। भूगोल केवल मानचित्र पर नहीं होता — वह लोगों की स्मृति में भी होता है। और सीतामढ़ी की सबसे बड़ी पहचान यह है कि यहाँ के लोगों की स्मृति में माता जानकी सबसे पहले बसती हैं।

2.2 पुरातात्त्विक साक्ष्य

इतिहास को समझने के दो रास्ते होते हैं — एक वह जो ग्रन्थों में लिखा है, और दूसरा वह जो धरती के भीतर दबा पड़ा है। सीतामढ़ी के सन्दर्भ में दोनों रास्ते एक ही दिशा में जाते हैं और वह दिशा माता जानकी की ओर है। सीतामढ़ी से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित "पुनौरा धाम" को भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (Archaeological Survey of India) ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल के रूप में चिह्नित किया है। यहाँ हुई खुदाई में प्राचीन टेराकोटा मूर्तियाँ, पकी हुई ईंटें, पूजा-सामग्री के अवशेष और विभिन्न धातु के उपकरण प्राप्त हुए हैं जो इस स्थान की प्राचीनता को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करते हैं। इन अवशेषों की काल-गणना करने पर यह तथ्य सामने आता है कि यह स्थल अत्यन्त प्राचीन काल से मानव-सभ्यता का केन्द्र रहा है।

पुनौरा धाम में एक विशाल कुण्ड है जिसे "सीता कुण्ड" कहा जाता है। स्थानीय परम्परा के अनुसार इसी स्थान पर राजा जनक यज्ञ की भूमि जोत रहे थे और उनके हल की नोक ने जिस रेखा को खींचा, उसमें से एक दिव्य कन्या का प्रादुर्भाव हुआ। इस कुण्ड के चारों ओर की मिट्टी की परतों में पुरातात्त्विक खुदाई के दौरान जो अवशेष मिले हैं, वे इस लोक-मान्यता को केवल कल्पना नहीं रहने देते। "हलेश्वर स्थान" — जो नगर के निकट ही है — एक और महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक और धार्मिक स्थल है। यहाँ स्थित शिव मन्दिर की प्राचीनता के विषय में स्थानीय विद्वानों का मत है कि यह गुप्तकाल या उससे भी पूर्व का है। किंवदन्ती यह है कि यहाँ राजा जनक के हल का एक दाँत टूटकर गिरा था — और तभी से यह स्थान "हलेश्वर" नाम से जाना जाता है। "बगही मठ" और "उर्बीजा कुण्ड" भी ऐसे स्थल हैं जिनके पुरातात्त्विक और सांस्कृतिक महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। बगही मठ की स्थापत्य-शैली और वहाँ प्राप्त शिलालेखों से मिथिला के वैष्णव परम्परा के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। यह सत्य है कि इस क्षेत्र में अभी उस स्तर पर व्यवस्थित और व्यापक पुरातात्त्विक उत्खनन नहीं हुआ है जितना होना चाहिए था। बार-बार आने वाली बाढ़ ने कई ऐतिहासिक अवशेषों को नष्ट किया है और कई को धरती की गहरी परतों में दफन कर दिया है। किन्तु जो कुछ भी अब तक सामने आया है, वह इस बात के लिए पर्याप्त है कि सीतामढ़ी को केवल आस्था का केन्द्र नहीं, ऐतिहासिक अन्वेषण का एक गम्भीर और सम्मानजनक क्षेत्र माना जाए। धरती के भीतर अभी भी बहुत कुछ दबा है — बस खोदने की इच्छाशक्ति और संसाधन चाहिए।

2.3 शास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लेख

जब किसी स्थान की चर्चा एक साथ कई महान ग्रन्थों में हो, तो उसकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध हो जाती है। सीतामढ़ी और उससे जुड़ी माता जानकी की जन्म-कथा इस दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है — भारतीय साहित्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रतिष्ठित रचनाओं में इस भूमि का उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि रामायण — जो रामकथा का मूल और प्राचीनतम स्रोत है — के बालकाण्ड में राजा जनक स्वयं सीता की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। वे राम से कहते हैं कि एक बार वे मिथिला की भूमि को यज्ञ के लिए जोत रहे थे, तब हल की नोक से एक दिव्य

कन्या प्रकट हुई। चूँकि वह भूमि की सीत (रेखा) से उत्पन्न हुई, इसलिए उसका नाम "सीता" रखा गया। यह वर्णन संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त गहरा है — इसमें स्त्री को धरती की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने मिथिला के वैभव और जनकपुरी की सांस्कृतिक समृद्धि का अत्यन्त सजीव और भावपूर्ण चित्रण किया है। बालकाण्ड में जब राम और लक्ष्मण जनकपुर आते हैं, तो वह नगर का वर्णन पाठक के मन में एक सम्पन्न और परिष्कृत सभ्यता की छवि उपस्थित करता है। तुलसीदास ने मिथिला को केवल भूगोल नहीं, एक सांस्कृतिक भाव के रूप में चित्रित किया।

अध्यात्म रामायण और **आनन्द रामायण** में भी सीता की उत्पत्ति और मिथिला-भूमि के महात्म्य का विस्तृत उल्लेख मिलता है। **स्कन्द पुराण** के एक खण्ड में इस भूमि को "सीता-क्षेत्र" के रूप में वर्णित किया गया है और यहाँ के तीर्थों की महिमा का गान किया गया है।

मैथिली साहित्य के महाकवि **विद्यापति** ने अपने पदों में माता जानकी का बारम्बार स्मरण किया है। विद्यापति के लिए सीता केवल एक पौराणिक पात्र नहीं थीं — वे मिथिला की आत्मा थीं। उनके पदों में जो भावनात्मक गहराई और स्थानीय रंग है, वह इस बात का प्रमाण है कि 14वीं-15वीं शताब्दी में भी माता जानकी की स्मृति इस भूमि पर उतनी ही जीवन्त थी जितनी आज है।

इन सभी ग्रन्थों का एक साथ अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट होती है — सीतामढ़ी और उसकी सांस्कृतिक पहचान किसी एक ग्रन्थ या एक परम्परा की देन नहीं है। यह संस्कृत के महाकाव्यों से लेकर मैथिली के लोक-पदों तक, शास्त्र से लेकर लोक तक — सब ने मिलकर इस भूमि को वह विशिष्ट स्थान दिया है जो आज उसके पास है। और यही इस विरासत को इतना अटूट और अमर बनाता है।

3. माता जानकी की लोक-चेतना : स्वरूप और आयाम

3.1 लोक-चेतना की अवधारणा

जब हम किसी पुस्तकालय में बैठकर किसी महान व्यक्तित्व के बारे में पढ़ते हैं तो वह ज्ञान होता है। किन्तु जब एक माँ अपनी नवजात बेटी को गोद में लेकर उसे जानकी माई की कहानी सुनाती है — आँखों में आँसू भरकर, आवाज में अपार स्नेह लेकर — तो वह लोक-चेतना होती है। यह दोनों एक नहीं हैं। ज्ञान किताबों में होता है, लोक-चेतना जीवन में होती है।

"लोक-चेतना" एक ऐसी सामूहिक अनुभूति है जो किसी समाज की आत्मा में, उसके रोजमर्रा के जीवन में, उसके उत्सवों और विपत्तियों में और उसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती आ रही मौखिक परम्पराओं में अपना घर बनाती है। यह शास्त्र की तरह व्यवस्थित नहीं होती, दर्शन की तरह तर्कबद्ध नहीं होती — किन्तु यह उन दोनों से अधिक जीवन्त और अधिक टिकाऊ होती है क्योंकि यह हृदय से उपजती है और हृदय तक पहुँचती है। लोक-चेतना के कई आयाम होते हैं। पहला आयाम है **स्मृति** — वह सामूहिक याददाश्त जो किसी महान घटना या महान व्यक्तित्व को जीवित रखती है। दूसरा आयाम है **अभिव्यक्ति** — गीत, कथा, नाट्य, चित्रकला और अनुष्ठान के माध्यम से उस स्मृति को रूप देना। तीसरा आयाम है **तादात्म्य** — अर्थात् उस ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्तित्व को अपने जीवन से जोड़कर देखना, उसकी पीड़ा में अपनी पीड़ा देखना और उसकी शक्ति से अपनी शक्ति पाना।

माता जानकी से जुड़ी लोक-चेतना इन तीनों आयामों में एक साथ सक्रिय है। मिथिलांचल की महिलाएँ उन्हें याद करती हैं, उनके गीत गाती हैं और अपने जीवन की परिस्थितियों में उन्हें अपने सामने खड़ा पाती हैं। जब किसी स्त्री पर अन्याय होता है, जब किसी बेटी को घर से विदा किया जाता है, जब कोई माँ अकेले अपने बच्चों को पालती है — तो मिथिला की लोक-चेतना कहती है : "जानकी माई भी तो यही सब झेली थीं।"

यही तादात्म्य लोक-चेतना को इतना शक्तिशाली बनाता है। यह केवल भूतकाल की स्मृति नहीं — यह वर्तमान के संघर्ष का सहारा भी है। और इसीलिए माता जानकी की लोक-चेतना सदियों बाद भी उतनी ही ताजी और उतनी ही प्रासंगिक है जितनी त्रेतायुग में रही होगी। वास्तव में लोक-चेतना वह अमृत है जो किसी संस्कृति को मृत्यु से बचाती है — और मिथिला की संस्कृति इसका सबसे जीवन्त प्रमाण है।

3.2 माता जानकी का स्त्री-विमर्शीय स्वरूप

यदि हम रामायण को केवल एक धार्मिक ग्रन्थ की दृष्टि से पढ़ें तो सीता एक आदर्श पत्नी दिखती हैं — पति के पीछे वन जाने वाली, अग्नि-परीक्षा देने वाली, सब कुछ सहकर भी मुस्कुराने वाली। किन्तु जब हम उसी सीता को मिथिलांचल की लोक-परम्परा की दृष्टि से देखते हैं तो एक बिल्कुल अलग और कहीं अधिक सशक्त व्यक्तित्व सामने आता है। मिथिला की महिलाएँ सीता को "राम की पत्नी" के रूप में नहीं, "जनक की बेटी" के रूप में पहचानती और सम्मान देती हैं। यह भेद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। "राम की पत्नी" एक सम्बन्ध है जो पति से परिभाषित होता है, किन्तु "जनक की बेटी" एक स्वतन्त्र अस्मिता है जो स्वयं उनके अपने जन्म और पालन-पोषण से परिभाषित होती है। मिथिला ने सीता को उनकी अपनी पहचान दी है — और यही इस अंचल की सबसे बड़ी सांस्कृतिक उपलब्धि है।स्त्री-विमर्श की दृष्टि से माता जानकी का व्यक्तित्व कई स्तरों पर विचारणीय है।

पहला स्तर है उनका जन्म — वे किसी राजा के वीर्य से नहीं, धरती की कोख से जन्मी हैं। वे "भूमिजा" हैं। इस प्रतीक में स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता का एक गहरा सन्देश है — वह किसी पुरुष की देन नहीं, प्रकृति की स्वयंभू शक्ति है।

दूसरा स्तर है उनका वनवास-काल का जीवन। वाल्मीकि आश्रम में अकेले, बिना किसी सहारे के, दो पुत्रों को जन्म देना और उन्हें वीर और विद्वान बनाना — यह कार्य किसी असाधारण मातृशक्ति का ही हो सकता है। लुव-कुश को अपने पिता की सेना के विरुद्ध लड़ने में सक्षम बनाने वाली माँ कोई निरीह अबला नहीं थी। मिथिला के लोक-गीतों में यह वाला सीता अधिक प्रिय है।

तीसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर है उनका अन्तिम निर्णय — धरती में समा जाना। इसे साधारणतः "दुःखान्त" के रूप में देखा जाता है। किन्तु मिथिलांचल की वृद्ध महिलाएँ इसे बिल्कुल अलग नजरिए से देखती हैं। उनका कहना है — "जानकी माई ने जब देखा कि इस संसार में उनकी गरिमा बार-बार प्रश्नों के घेरे में आती है, तो उन्होंने अपनी शर्तों पर जाना चुना।" यह पराजय नहीं, यह एक सशक्त स्त्री का अन्तिम और अटल आत्म-निर्णय है।

इस प्रकार माता जानकी की लोक-चेतना में जो स्त्री-विमर्श है, वह आधुनिक नारीवाद के किसी सिद्धान्त की मोहताज नहीं — वह सदियों पहले से मिथिला की माताओं और बेटियों के अनुभव में जीवित है।

3.3 मिथिला के लोक-गीतों में जानकी

यदि किसी संस्कृति की आत्मा को सुनना हो तो उसके गीत सुनिए। मिथिलांचल के लोक-गीत उस धरती की साँस हैं — और उन साँसों में सबसे अधिक जो नाम आता है, वह है "जानकी माई" का। जन्म से लेकर मृत्यु तक, खुशी से लेकर गम तक — मिथिला के हर अवसर पर जानकी माई किसी न किसी गीत में उपस्थित रहती हैं।

समदाउन मिथिला का सर्वाधिक भावनात्मक लोक-गीत है जो विवाह के अवसर पर — विशेषकर दुल्हन की विदाई के समय — गाया जाता है। इन गीतों में राजा जनक और माता सुनयना की बेटी सीता की विदाई का ऐसा मार्मिक वर्णन होता है कि सुनने वाले की आँखें भर आती हैं। एक प्रसिद्ध समदाउन की पंक्तियाँ हैं —

"कोना छोड़ब जनकपुर अँगना, कोना छोड़ब माय।
सासुर जाइत मोन भरि रोअए, जानकी जनकदुलाय॥"

अर्थात् — "कैसे छोड़ूँगी जनकपुर का आँगन, कैसे छोड़ूँगी माँ को। ससुराल जाते मन भर-भर रोता है, जानकी जनक की लाडली।" इन पंक्तियों में हर मिथिला की बेटी स्वयं को सीता के रूप में देखती है और अपनी विदाई को सीता की विदाई से जोड़ती है।

सोहर — बच्चे के जन्म पर गाया जाने वाला लोक-गीत — में भी सीता के जन्म का उल्लेख मिलता है। हल की नोक से धरती फटना और सीता का प्रकट होना — यह दृश्य सोहर गायन में इस प्रकार उतरता है कि स्त्री-जन्म की पवित्रता और विशिष्टता स्वयंसिद्ध हो जाती है। जिस समाज में बेटी के जन्म पर कभी-कभी निराशा व्यक्त होती थी, वहाँ यह सोहर एक सांस्कृतिक प्रतिरोध का काम करता था।

बारहमासा गीतों में सीता के वनवास के बारह महीनों का वर्णन होता है जिसमें ऋतुओं के बदलाव के साथ उनकी भावनाओं का चित्रण किया जाता है। यह गीत इतने जीवन्त होते हैं कि लगता है जैसे गाने वाली स्त्री स्वयं उस वन में खड़ी है।

जट-जटिन — मिथिला का एक अत्यन्त प्राचीन लोक-नाट्य — में भी सीता-राम के प्रतीक परोक्ष रूप से उभरते हैं। पति-पत्नी के सम्बन्धों का जो हास्य और करुणा से भरा चित्रण इस नाट्य में होता है, उसकी जड़ें रामायण की उसी परम्परा में हैं।

इन सभी गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये किसी पण्डित या विद्वान ने नहीं लिखे — इन्हें उन महिलाओं ने रचा और गाया जो खेतों में काम करती थीं, चक्की पीसती थीं और बच्चों को पालती थीं। इनमें जो भाषा है, जो भाव है, जो दर्द है — वह जीवन की कच्ची मिट्टी से बना है। और इसीलिए ये गीत हजारों साल बाद भी उतने ही सच्चे और उतने ही मार्मिक लगते हैं।

4. सीतामढ़ी की सांस्कृतिक विरासत

4.1 प्रमुख धार्मिक-सांस्कृतिक स्थल

कुछ स्थान केवल नक्शे पर नहीं होते — वे लोगों के हृदय में होते हैं। सीतामढ़ी के धार्मिक और सांस्कृतिक स्थल इसी श्रेणी में आते हैं। यहाँ आने वाला श्रद्धालु केवल मन्दिर के दर्शन नहीं करता — वह उस मिट्टी को छूने आता है जहाँ माता जानकी का पहला स्पर्श हुआ था, उस वायु में साँस लेने आता है जिसमें उनकी स्मृति घुली हुई है।

जानकी स्थान मन्दिर सीतामढ़ी नगर का सबसे प्रमुख और सबसे प्राचीन धार्मिक केन्द्र है। यहाँ माता जानकी की जो प्रतिमा स्थापित है, उसे देखकर भक्त मूक हो जाते हैं। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि यहाँ आने वाले श्रद्धालुओं में अधिकांश महिलाएँ होती हैं — वे जानकी माई में अपनी माँ को, अपनी बेटी को और अपने आप को देखती हैं। यह मन्दिर केवल पूजा का स्थान नहीं, मिथिला की स्त्री-चेतना का केन्द्र है।

पुनौरा धाम — जो नगर से लगभग तीन किलोमीटर दूर है — उस पवित्र स्थान के रूप में जाना जाता है जहाँ राजा जनक के हल की नोक से धरती फटी थी और सीता प्रकट हुई थीं। यहाँ का "सीता कुण्ड" एक विशाल और शान्त जलाशय है। इस कुण्ड के

किनारे बैठकर जो शान्ति मिलती है, वह किसी आधुनिक ध्यान-केन्द्र में नहीं मिल सकती। यहाँ प्रतिवर्ष विवाह पंचमी और जानकी नवमी पर लाखों श्रद्धालु आते हैं।

पंथ पाकड़ — यह सीतामढ़ी जिला मुख्यालय से उत्तर-पूर्व दिशा में लगभग 8 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।हिंदू मान्यताओं के अनुसार, भगवान राम से विवाह के बाद जब माता सीता की डोली (पालकी) जनकपुर से अयोध्या जा रही थी, तब यह काफिला यहाँ रुका था।जिसके नीचे माता सीता ने विश्राम किया था।

हलेश्वर स्थान एक ऐसा स्थल है जो धार्मिक और पुरातात्त्विक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ का प्राचीन शिव मन्दिर इस बात का प्रमाण है कि यह क्षेत्र शैव और वैष्णव दोनों परम्पराओं का संगम-स्थल रहा है। किंवदन्ती के अनुसार यहीं जनक के हल का दाँत टूटा था और तभी धरती ने अपनी कोख में से सीता को प्रकट किया।

बगही मठ मिथिला की वैष्णव परम्परा का एक जीवन्त केन्द्र है। इस मठ में आज भी नित्य पूजा, प्रवचन और सांस्कृतिक आयोजन होते हैं। यह स्थान उन लोगों के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है जो मिथिला की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को जीते हैं।

उर्बीजा कुण्ड और **देवकुली** भी ऐसे स्थल हैं जो इस क्षेत्र की धार्मिक भूगोल को समृद्ध करते हैं। इन स्थलों को देखकर यह अनुभव होता है कि सीतामढ़ी केवल एक जनपद नहीं — यह एक तीर्थ-मण्डल है जिसके हर कोने में माता जानकी की उपस्थिति अनुभव होती है। जरूरत है कि इन स्थलों का समुचित संरक्षण और विकास हो ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस विरासत को उसी श्रद्धा से देख सकें।

4.2 मिथिला कला और माता जानकी

कला वह भाषा है जो तब बोलती है जब शब्द कम पड़ जाते हैं। मिथिला की "मधुबनी चित्रकला" — जिसे आज सारा संसार जानता है — ऐसी ही एक भाषा है जो सदियों से माता जानकी की कथा को दीवारों पर, कागज पर और कपड़े पर उकेरती आई है। यह कला किसी कला-विद्यालय में नहीं सीखी गई — यह माँ से बेटी को, दादी से पोती को, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती आई है। मधुबनी चित्रकला में माता जानकी से जुड़े प्रसंग सबसे अधिक चित्रित किये जाते हैं। **सीता-जन्म** का दृश्य — जिसमें राजा जनक हल लिये खेत में हैं और धरती की कोख से एक दिव्य शिशु प्रकट हो रही है — मधुबनी की सबसे प्रिय और सबसे अधिक बनाई जाने वाली थीम है। इस चित्र में रेखाओं की जो सादगी है और रंगों की जो जीवन्तता है, वह देखने वाले को तुरन्त उस पौराणिक क्षण से जोड़ देती है।

राम-सीता विवाह का चित्रण मिथिला के विवाह-संस्कार का अभिन्न अंग है। आज भी जब कोई विवाह होता है तो "कोहबर घर" — नव-विवाहित दम्पती का कक्ष — में मधुबनी शैली में राम-सीता के विवाह का चित्र बनाने की परम्परा है। यह केवल सजावट नहीं है — यह एक आशीर्वाद है, एक प्रार्थना है कि यह नया जोड़ा उतना ही पवित्र और प्रेमपूर्ण हो।

सीता का वनवास और **अशोक वाटिका** के दृश्य भी मधुबनी कलाकारों को बहुत प्रिय हैं। इन चित्रों में जो व्यथा और जो गरिमा एक साथ दिखती है, वह मिथिला की स्त्री की अपनी कथा भी है। चित्र बनाने वाली महिला जब सीता की अकेलेपन और पीड़ा को रंगों में उतारती है, तो वह अपने भीतर के दर्द को भी उसमें ढालती है।

मधुबनी कला को 2003 में भौगोलिक संकेत (GI Tag) प्राप्त हुआ और यह आज विश्वभर में सराही जाती है। किन्तु इस कला की असली ताकत उसकी वैश्विक पहचान में नहीं — उसकी असली ताकत उन हजारों ग्रामीण महिलाओं में है जो आज भी बिना किसी प्रसिद्धि की चाह के अपने आँगन में, अपनी दीवार पर जानकी माई का चेहरा उकेरती हैं। यह कला जीवित है क्योंकि इसकी जड़ें केवल परम्परा में नहीं, भावना में हैं।

4.3 सांस्कृतिक उत्सव एवं मेले

किसी भी संस्कृति की असली पहचान उसके उत्सवों में होती है। उत्सव वह समय होता है जब एक पूरा समाज अपनी व्यक्तिगत चिन्ताओं को एक ओर रखकर किसी साझी स्मृति और साझी भावना में डूब जाता है। सीतामढ़ी के उत्सव इस अर्थ में विशेष हैं क्योंकि इनके केन्द्र में सदा माता जानकी की उपस्थिति रहती है।

विवाह पंचमी — मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी — इस क्षेत्र का सबसे बड़ा और सबसे भावनात्मक उत्सव है। इस दिन राम और सीता के विवाह की स्मृति में सीतामढ़ी में विशाल आयोजन होता है। जनकपुर (नेपाल) से लोग पैदल चलकर सीतामढ़ी आते हैं और यहाँ से लोग जनकपुर जाते हैं — यह आवाजाही केवल धार्मिक नहीं, दो देशों के बीच एक सांस्कृतिक सेतु है जो हर वर्ष नया होता है। इस दिन जो झाँकियाँ निकलती हैं, जो भजन गाये जाते हैं और जो सामूहिक भोज होता है — वह एक ऐसा दृश्य है जो एक बार देखने पर जीवनभर नहीं भूलता।

जानकी नवमी — वैशाख शुक्ल नवमी — को माता सीता की जन्म-जयन्ती के रूप में मनाया जाता है। इस दिन पुनौरा धाम और जानकी स्थान मन्दिर में भव्य पूजा-अर्चना होती है। महिलाएँ विशेष रूप से इस दिन व्रत रखती हैं और माता जानकी से अपनी बेटियों के सुखी जीवन की कामना करती हैं। यह पर्व मिथिला की स्त्री-चेतना का उत्सव है।

सामा-चकेवा मिथिला का एक अनूठा लोक-उत्सव है जो भाई-बहन के प्रेम का प्रतीक है। इसमें माटी की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं और रात को गीत गाये जाते हैं। इस पर्व में सीता के भाई-बहन प्रेम की झलक भी दिखती है।

लालदरवाजा मेला और अन्य स्थानीय मेले इस क्षेत्र के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। इन मेलों में लोक-कला, लोक-संगीत और लोक-नाट्य के प्रदर्शन होते हैं जो युवा पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ते हैं।

इन उत्सवों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये केवल अमीरों या शिक्षितों के उत्सव नहीं हैं — ये खेत में काम करने वाले किसान के भी उत्सव हैं, झोपड़ी में रहने वाली महिला के भी उत्सव हैं। यही समावेशिता इन्हें वास्तविक लोक-उत्सव बनाती है।

4.4 भाषिक विरासत : मैथिली और माता जानकी

भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं होती — वह किसी समाज की आत्मा होती है, उसकी स्मृति होती है और उसकी पहचान होती है। मिथिलांचल की भाषा — मैथिली — इस सत्य का सबसे उज्ज्वल उदाहरण है। और मैथिली का जब भी नाम आता है, उसके साथ दो नाम अनिवार्य रूप से आते हैं — विद्यापति और माता जानकी।

मैथिली भारत की उन प्राचीन और समृद्ध भाषाओं में से एक है जिसे संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान प्राप्त है। इस भाषा की साहित्यिक परम्परा अत्यन्त प्राचीन और सम्पन्न है। किन्तु जो बात मैथिली को अन्य भाषाओं से अलग करती है, वह यह है कि इसमें माता जानकी की स्मृति एक जीवन्त धागे की तरह बुनी हुई है।

महाकवि **विद्यापति** — जिन्हें "मैथिल कोकिल" कहा जाता है — ने 14वीं-15वीं शताब्दी में मैथिली में जो पद लिखे, उनमें माता जानकी की उपस्थिति अत्यन्त गहरी है। विद्यापति के लिए सीता केवल एक पौराणिक पात्र नहीं थीं — वे मिथिला की सांस्कृतिक गरिमा का प्रतीक थीं। उनके पदों में जो भाषा है वह इतनी मधुर और इतनी जीवन्त है कि आज भी जब कोई मैथिली भाषी उन्हें पढ़ता है तो लगता है जैसे शब्द हृदय में सीधे उतर जाते हैं।

मैथिली की लोक-परम्परा में **"विद्यापति-गीत"** एक विशेष स्थान रखते हैं। इन गीतों में से कई माता जानकी और उनके जीवन-प्रसंगों से सीधे जुड़े हैं। जब एक मैथिल महिला विद्यापति का पद गाती है, तो वह उसे केवल गाती नहीं — वह उसे जीती है।

मैथिली में लोक-कथाओं की एक विशाल मौखिक परम्परा है जिसमें सीता की कहानी बार-बार, हर बार थोड़े अलग रूप में, आती है। कहीं वह एक माँ हैं जो अपने बच्चों के लिए लड़ती हैं, कहीं एक बेटी हैं जो घर छोड़ने का दर्द सह रही हैं, कहीं एक स्त्री हैं जो अन्याय को चुपचाप स्वीकार करने से इनकार करती हैं। मैथिली भाषा और माता जानकी का यह सम्बन्ध केवल साहित्यिक नहीं है — यह एक जीवन्त सांस्कृतिक रिश्ता है जो आज भी हर मैथिल के हृदय में धड़कता है और जो इस भाषा को उसकी आत्मा देता है।

5. लोक-चेतना में माता जानकी : स्त्री-शक्ति का प्रतीक

5.1 पीड़ा का सौन्दर्यशास्त्र

भारतीय संस्कृति में एक विचित्र और गहरी बात है — यहाँ पीड़ा को केवल कष्ट नहीं माना जाता, उसे एक प्रकार की साधना भी माना जाता है। किन्तु माता जानकी के सन्दर्भ में जब हम लोक-चेतना में "पीड़ा के सौन्दर्यशास्त्र" की बात करते हैं, तो हमारा आशय न तो पीड़ा का महिमामण्डन है और न ही उसे स्वीकार करने का आग्रह — बल्कि हम उस विशेष भारतीय लोक-दृष्टि की बात कर रहे हैं जो पीड़ा में भी एक असाधारण सौन्दर्य और शक्ति देखती है। मिथिलांचल के लोक-गीतों में सीता की पीड़ा का जो चित्रण है, वह किसी त्रासदी जैसा नहीं लगता — वह एक ऐसे व्यक्तित्व का चित्रण है जो अपार कष्ट उठाकर भी न टूटा, न झुका। जब समदाउन में सीता की विदाई का वर्णन होता है तो सुनने वाले की आँखें भर आती हैं — किन्तु वह आँसू केवल दुःख के नहीं होते, उनमें एक गहरा सम्मान भी होता है। इस भावना को ही "पीड़ा का सौन्दर्यशास्त्र" कहा जा सकता है।

सीता के जीवन में तीन बड़े कष्ट आये — पहला वनवास, दूसरा रावण-हरण और तीसरा अग्नि-परीक्षा के बाद भी वन-गमन। इन तीनों को मिथिला की लोक-परम्परा ने तीन अलग-अलग रूपों में देखा है। पहले कष्ट में वे पत्नी की भूमिका में हैं और प्रेम के कारण वन गई हैं। दूसरे कष्ट में वे एक ऐसी स्त्री हैं जो शत्रु की कैद में भी अपनी गरिमा को अक्षुण्ण रखती हैं। तीसरे कष्ट में — और यह सबसे महत्त्वपूर्ण है — वे एक ऐसी माँ हैं जो अपने बच्चों को वन में पालती हैं और एक ऐसी स्त्री हैं जो व्यवस्था के अन्याय के विरुद्ध अपनी मौन किन्तु अटल असहमति प्रकट करती हैं। लोक-गायिकाएँ जब बारहमासा गाती हैं और सीता के वनवास के बारह महीनों का वर्णन करती हैं — जेठ की तपती धूप में, सावन की बाढ़ में, पूस की कड़कड़ाती सर्दी में — तो वह केवल एक पात्र की पीड़ा का वर्णन नहीं होता। वह उन सभी स्त्रियों की पीड़ा का वर्णन होता है जो इतिहास में, समाज में और परिवार में अकेली संघर्ष करती रही हैं। सीता की पीड़ा उनकी सामूहिक पीड़ा का प्रतीक बन जाती है। और यहीं से पीड़ा सौन्दर्य में बदल जाती है — जब एक व्यक्ति की कथा पूरे समाज की कथा बन जाती है, जब एक स्त्री का दर्द हजारों स्त्रियों की साझी भावना बन जाती है, तो उसमें एक अद्‌भुत सौन्दर्य उत्पन्न होता है। माता जानकी की पीड़ा ने मिथिला की स्त्री को कमजोर नहीं बनाया — उसे एक ऐसा आलम्बन दिया जिससे वह अपनी पीड़ा को अर्थ दे सके।

5.2 धरती और स्त्री का सम्बन्ध

संसार की हर प्राचीन सभ्यता में एक समानता दिखती है — धरती को स्त्री माना गया है और स्त्री को धरती। यह कोई संयोग नहीं है। दोनों जन्म देती हैं, दोनों पालती हैं, दोनों सहती हैं और दोनों के भीतर असीमित शक्ति है। माता सीता इस सम्बन्ध का सबसे पूर्ण और सबसे सुन्दर प्रतीक हैं। "सीता" शब्द की व्युत्पत्ति ही इस सम्बन्ध को स्पष्ट कर देती है। संस्कृत में "सीत" का अर्थ है हल की रेखा — वह रेखा जो धरती में खींची जाती है बीज बोने के लिए। इस रेखा में से जो उत्पन्न हुई, वह सीता हैं। अर्थात् वे उस क्रिया से जन्मी हैं जो धरती को उर्वर बनाती है, जो जीवन को सम्भव बनाती है। यह नाम एक सम्पूर्ण दार्शनिक विचार है।

मिथिलांचल की कृषि-संस्कृति में इस प्रतीक का महत्त्व और भी गहरा है। यह वह भूमि है जहाँ किसान आज भी अपने खेत को "माँ" कहता है, जहाँ बुआई से पहले धरती की पूजा होती है और जहाँ फसल को "धरती माँ का प्रसाद" माना जाता है। इस संस्कृति में सीता का जन्म कोई अलौकिक घटना नहीं — वह इस समाज के मूल दर्शन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। मिथिला के लोक-गीतों में एक बहुत पुरानी उक्ति मिलती है — *"जेना धरती सबके सहए, तेना जानकी सहलनि सब।"* अर्थात् "जैसे धरती सबको सहती है, वैसे जानकी ने सब कुछ सहा।" यह तुलना माता सीता की सहनशीलता को धरती की सहनशीलता से जोड़ती है। किन्तु यहाँ "सहना" शब्द को कमजोरी के रूप में नहीं समझना चाहिए — धरती जब "सहती" है तो वह शक्ति से सहती है, वह फिर भी उगाती रहती है, फिर भी देती रहती है।m और सीता का धरती में समा जाना भी इसी दर्शन की पूर्णता है। वे जहाँ से आई थीं, वहीं लौट गईं। धरती अपनी बेटी को वापस ले गई — जैसे एक माँ अपनी बेटी को अन्याय से बचाने के लिए अपनी बाँहों में समेट लेती है। यह प्रतीक मिथिला की स्त्री-चेतना में इतनी गहराई से बैठा है कि आज भी जब कोई महिला अन्याय का सामना करती है, तो कहा जाता है — "जानकी माई की तरह धरती उसे भी सहारा देगी।"

5.3 आधुनिक स्त्री-विमर्श और जानकी

21वीं सदी में जब हम नारीवाद और स्त्री-अधिकारों की बात करते हैं, तो अक्सर यह माना जाता है कि ये विचार पश्चिम से आये हैं और भारतीय परम्परा में इनके लिए कोई स्थान नहीं था। किन्तु मिथिला की लोक-चेतना इस धारणा को सिरे से नकारती है। यहाँ माता जानकी की जो छवि है, वह किसी भी आधुनिक स्त्री-विमर्श से कम सशक्त नहीं। आधुनिक नारीवादी विमर्श ने सीता के चरित्र को मुख्यतः तीन दृष्टिकोणों से देखा है। **पहला दृष्टिकोण** वह है जो उन्हें पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार मानता है और उनकी "आज्ञाकारिता" को स्त्री-उत्पीड़न का प्रतीक देखता है।

दूसरा दृष्टिकोण वह है जो उनमें एक सशक्त, स्वाभिमानी और स्वतन्त्र व्यक्तित्व देखता है जो अन्ततः अपनी शर्तों पर जीया। **तीसरा दृष्टिकोण** — जो सबसे अधिक मिथिला की लोक-चेतना के करीब है — वह है जो उन्हें एक ऐसी स्त्री के रूप में देखता है जो व्यवस्था के विरुद्ध मौन किन्तु अटल प्रतिरोध का प्रतीक है। मिथिलांचल की आधुनिक शिक्षित महिलाएँ आज जब सीता को देखती हैं, तो उनमें एक नई सीता दिखती है। वह सीता जिसने लुव-कुश को न केवल जन्म दिया बल्कि उन्हें इतना सशक्त बनाया कि वे अपने पिता की सेना को भी चुनौती दे सकें — यह सीता एक सशक्त और स्वतन्त्रचेता माँ की छवि है। वह सीता जिसने अग्नि-परीक्षा के बाद भी जब पुनः अपनी पवित्रता सिद्ध करने को कहा गया तो धरती में समा जाना चुना — यह सीता एक ऐसी स्त्री है जिसने कहा कि "बस, अब और नहीं।"

आज मिथिला की महिला-संगठन और सामाजिक कार्यकर्ता माता जानकी को अपनी प्रेरणा का स्रोत बताती हैं। वे कहती हैं — "जानकी माई ने हमें सिखाया कि धरती की तरह सहनशील होना कमजोरी नहीं, शक्ति है। किन्तु उन्होंने यह भी सिखाया कि जब अन्याय की सीमा पार हो जाये, तो उसे स्वीकार मत करो।" माता जानकी का यही संदेश आज के स्त्री-विमर्श में सबसे अधिक प्रासंगिक है।

6. सांस्कृतिक संरक्षण की चुनौतियाँ और अवसर

6.1 वर्तमान स्थिति

किसी विरासत की सबसे बड़ी परीक्षा तब होती है जब समय बदलता है। और आज का समय बहुत तेजी से बदल रहा है। वैश्वीकरण, डिजिटल क्रान्ति और शहरीकरण ने जहाँ एक ओर दुनिया को करीब लाया है, वहीं दूसरी ओर स्थानीय संस्कृतियों, लोक-परम्पराओं और क्षेत्रीय भाषाओं के लिए एक गहरा संकट भी खड़ा किया है। सीतामढ़ी और मिथिलांचल की सांस्कृतिक विरासत भी इस संकट से अछूती नहीं है।

मौखिक परम्पराओं का ह्रास सबसे बड़ी चिन्ता का विषय है। समदाउन, सोहर, बारहमासा और बिरहा जैसे लोक-गीत जो पीढ़ियों से माँ से बेटी को मिलते आये थे — आज उनकी श्रृंखला टूट रही है। जो वृद्ध महिलाएँ इन गीतों की जानकार हैं, उनकी संख्या घट रही है और नई पीढ़ी इन्हें सीखने में रुचि नहीं दिखा रही। इन गीतों को जब ये महिलाएँ संसार से विदा होंगी, तब उनके साथ हजारों साल की सांस्कृतिक स्मृति भी चली जायेगी।

धार्मिक स्थलों की दुर्दशा एक और गम्भीर समस्या है। पुनौरा धाम, हलेश्वर स्थान और कई अन्य सांस्कृतिक महत्त्व के स्थल उचित रखरखाव के अभाव में जीर्ण-शीर्ण होते जा रहे हैं। हर वर्ष आने वाली बाढ़ इन स्थलों को और अधिक क्षति पहुँचाती है। पर्यटन के आधारभूत ढाँचे — सड़क, आवास, सूचना-केन्द्र — का अभाव भी इन स्थलों तक पहुँचने में बाधा डालता है।

मधुबनी कला के कलाकारों की आर्थिक दशा भी चिन्ताजनक है। जो महिलाएँ इस कला को जीवित रखे हुए हैं, उनमें से अधिकांश को उचित आर्थिक प्रतिफल नहीं मिलता। बिचौलिये उनकी कला को कम दाम में खरीदकर अधिक दाम में बेचते हैं और कलाकार गरीब ही रहती हैं।

युवा पीढ़ी की उदासीनता सबसे दुखद पहलू है। शहरों और महानगरों की ओर पलायन करने वाले मिथिला के युवा अपनी भाषा, अपने गीत और अपनी परम्पराओं से धीरे-धीरे कट रहे हैं। वे मैथिली बोलने में संकोच करते हैं, समदाउन गाना नहीं जानते और मधुबनी पेंटिंग को "पुराने जमाने की चीज" समझते हैं।

यह स्थिति एक गम्भीर सांस्कृतिक संकट की ओर संकेत करती है जिसे यदि समय रहते नहीं सम्भाला गया तो आने वाली पीढ़ियाँ इस अमूल्य विरासत से वंचित हो जायेंगी।

6.2 संरक्षण के प्रयास

संकट की पहचान हो जाने के बाद उसके समाधान की दिशा में कदम उठाना जरूरी होता है। सुखद बात यह है कि सीतामढ़ी और मिथिलांचल की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए कई स्तरों पर प्रयास हो रहे हैं — सरकारी स्तर पर भी और सामाजिक स्तर पर भी। जरूरत है कि इन प्रयासों को और अधिक व्यापक, समन्वित और दीर्घकालिक बनाया जाये।

सरकारी स्तर पर बिहार सरकार ने "रामायण सर्किट" परियोजना के अन्तर्गत सीतामढ़ी को एक महत्त्वपूर्ण पर्यटन-स्थल के रूप में विकसित करने की योजना बनाई है। इस परियोजना के तहत पुनौरा धाम और जानकी स्थान का सौन्दर्यीकरण और अधारभूत सुविधाओं का विकास प्रस्तावित है। केन्द्र सरकार के पर्यटन मन्त्रालय ने भी इस परिपथ को "स्वदेश दर्शन" योजना में सम्मिलित किया है।

मधुबनी कला के संरक्षण की दिशा में कई सकारात्मक कदम उठाये गये हैं। GI टैग मिलने के बाद इस कला को वैश्विक पहचान मिली है और अन्तरराष्ट्रीय बाजार में इसकी माँग बढ़ी है। कई NGO और सरकारी संस्थाएँ मधुबनी कलाकारों को प्रशिक्षण, बाजार-सम्पर्क और डिजिटल प्लेटफॉर्म उपलब्ध करा रही हैं।

शैक्षणिक स्तर पर बिहार के कई विश्वविद्यालयों में मिथिला-संस्कृति, मैथिली साहित्य और लोक-परम्पराओं पर शोध-कार्य हो रहे हैं। मैथिली भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान मिलने के बाद इसके शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था भी बढ़ी है। कुछ विद्यालयों में मधुबनी चित्रकला को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है।

डिजिटल संरक्षण की दिशा में भी उत्साहजनक कार्य हो रहे हैं। युवा स्वयंसेवकों के समूह लोक-गायकों के गीतों को रिकॉर्ड कर रहे हैं, वृद्ध लोक-कथाकारों की कहानियों को वीडियो में सुरक्षित कर रहे हैं और मैथिली भाषा की सामग्री को इन्टरनेट पर उपलब्ध करा रहे हैं।

किन्तु इन सब प्रयासों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि ये अभी भी पर्याप्त नहीं हैं। जिस गति से यह विरासत लुप्त हो रही है, उस गति से संरक्षण के प्रयास नहीं हो रहे। आवश्यकता है कि स्थानीय समुदाय स्वयं इस संरक्षण का नेतृत्व करे — क्योंकि कोई भी सरकारी योजना तब तक सफल नहीं होती जब तक उसके पीछे जनता का हृदय न हो। माता जानकी की विरासत को जीवित रखने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी उन लोगों की है जो उन्हें "जानकी माई" कहते हैं।

7. निष्कर्ष

इस शोध-यात्रा के अन्त में एक गहरा अनुभव होता है — यह अनुभव कि माता जानकी केवल रामायण की एक पात्र नहीं हैं, वे एक सतत प्रवाहित सांस्कृतिक चेतना हैं जो मिथिलांचल की मिट्टी में, उसके गीतों में, उसकी कला में और सबसे बढ़कर उसकी महिलाओं के हृदय में हजारों वर्षों से जीवित है। जब हम सीतामढ़ी की गलियों में चलते हैं, पुनौरा धाम के सीता कुण्ड के किनारे बैठते हैं या किसी वृद्ध महिला के मुख से समदाउन सुनते हैं — तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास केवल किताबों में नहीं होता, वह लोगों की साँसों में भी होता है। प्रस्तुत शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि माता जानकी की लोक-चेतना किसी एक आयाम में नहीं समाती। वह एक साथ धार्मिक आस्था है, सांस्कृतिक स्मृति है, स्त्री-शक्ति का प्रतीक है, कलात्मक प्रेरणा है और सामाजिक प्रतिरोध का माध्यम भी है। यही बहुआयामिता उन्हें इतना जीवन्त और इतना अपरिहार्य बनाती है। सीतामढ़ी की सांस्कृतिक विरासत इस अर्थ में अनमोल है कि यहाँ शास्त्र और लोक, इतिहास और वर्तमान, भक्ति और स्त्री-चेतना — सब एक साथ मौजूद हैं। पुरातात्त्विक साक्ष्य इस भूमि की प्राचीनता को प्रमाणित करते हैं, वाल्मीकि से लेकर विद्यापति तक के ग्रन्थ इसकी साहित्यिक गरिमा को रेखांकित करते हैं और मधुबनी चित्रकला इसकी कलात्मक समृद्धि को विश्व-मंच पर स्थापित करती है।

किन्तु इस शोध का सबसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि इस विरासत को जीवित रखने की जिम्मेदारी किसी सरकार या संस्था की अकेली नहीं — यह उन सबकी जिम्मेदारी है जो "जानकी माई" कहते हैं। वह माँ जो अपनी बेटी को सोहर सुनाती है, वह कलाकार जो अपनी दीवार पर सीता-जन्म का चित्र उकेरती है और वह युवा जो अपनी मैथिली भाषा पर गर्व करता है — ये सब इस विरासत के असली संरक्षक हैं। माता जानकी धरती की बेटी थीं — और धरती कभी मरती नहीं। इसीलिए जानकी माई की स्मृति भी कभी मरेगी नहीं। बस जरूरत है उसे हर पीढ़ी में नये सिरे से पहचानने की, सहेजने की और आगे बढ़ाने की।

सन्दर्भ-सूची

1. वाल्मीकि. *वाल्मीकि रामायण.* हिन्दी अनुवाद : पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'. गीता प्रेस, गोरखपुर, 1994.
2. तुलसीदास. *श्रीरामचरितमानस* (सटीक). गीता प्रेस, गोरखपुर, 2005.
3. विद्यापति. *विद्यापति पदावली.* सम्पादक : डॉ. सुभद्रा झा. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1954.
4. विद्यापति. *विद्यापति पदावली.* सम्पादक : डॉ. रामवृक्ष बेनीपुरी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1960.
द्विवेदी, हजारीप्रसाद. *हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1955.
6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. *कबीर.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1942. *(मध्यकालीन लोक-चेतना के सन्दर्भ में)*
7. उपाध्याय, कृष्णदेव. *लोक-साहित्य की भूमिका.* साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1960.
8. उपाध्याय, कृष्णदेव. *भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन.* हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज, 1954.
9. तिवारी, भोलानाथ. *हिन्दी भाषा.* किताब महल, इलाहाबाद, 1961.
10. मिश्र, जयकान्त. *मैथिली साहित्य का इतिहास.* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1961.
11. बेनीपुरी, रामवृक्ष. *माटी की मूरतें.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1946.
12. बेनीपुरी, रामवृक्ष. *जंजीरें और दीवारें.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1952.
13. शर्मा, रामविलास. *भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश* (भाग-1). किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999.
14. सिंह, रामबृक्ष. *मिथिला : इतिहास और संस्कृति.* बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1983.